

**नीवह्योर्न।** यह वार्तिक है। **कारके** का अधिकार तो है ही साथ ही प्रकृतसूत्र से **अणि, कर्ता, णौ** और **कर्तुरीप्सिततमं कर्म** से **कर्म** की अनुवृत्ति रहती है। वार्तिकार्थः- **नी** तथा **वह्** धातुओं के अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा नहीं होती। ये दोनों धातुयें गत्यर्थक हैं, अतः प्रकृतसूत्र से अण्यन्तावस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा की प्राप्ति थी, उसका इस वार्तिक से निषेध किया गया है।

(देवदत्तः) **नाययति भारं भृत्येन।** देवदत्त भृत्य से भार ढोवाता है। अण्यन्तावस्था का वाक्य है- **भृत्यो भारं नयति।** इसका कर्ता है- **भृत्य।** नयति को ण्यन्त करने पर **नाययति** बनता है। गत्यर्थक होने के कारण अण्यन्तावस्था के प्रयोज्यकर्ता **भृत्य** की गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्मकर्मकाणामणिकर्ता **स णौ** कर्मसंज्ञा प्राप्त होने पर उसका **नीवह्योर्न** वार्तिक से निषेध हो जाने से द्वितीया नहीं हुयी, अपितु **कर्तृकरणयोस्तृतीया** से करणार्थ में तृतीया होकर **भृत्येन** बन जाता है।

(देवदत्तः) **वाहयति भारं भृत्येन।** देवदत्त भृत्य से भार ढोवाता है। अण्यन्तावस्था का वाक्य है- **भृत्यो भारं वहति।** इसका कर्ता है- **भृत्य।** वहति को ण्यन्त करने पर **वाहयति** बनता है। गत्यर्थक होने के कारण अण्यन्तावस्था के प्रयोज्यकर्ता **भृत्य** की गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्मकर्मकाणामणिकर्ता **स णौ** से प्राप्त कर्मसंज्ञा का **नीवह्योर्न** वार्तिक से निषेध हो जाने से द्वितीया नहीं हुयी, अपितु **कर्तृकरणयोस्तृतीया** से तृतीया होकर **भृत्येन** बन जाता है।

मूल में प्रदत्त **नाययति वाहयति वा भारं भृत्येन** यह वाक्य दोनों धातुओं का सम्मिलित उदाहरण है।

**नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेधः।** यह भी वार्तिक है। **कारके** का अधिकार तो है ही साथ ही प्रकृतसूत्र से **अणि, कर्ता, णौ** और **कर्तुरीप्सिततमं कर्म** से **कर्म** की अनुवृत्ति रहती है। वार्तिकार्थः- यदि वह्-धातु का कर्ता नियन्त्रक, नियन्ता, सारथि आदि के रूप में हो तो अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा का निषेध नहीं होता। यह **नीवह्योर्न** वार्तिक से प्राप्त कर्मसंज्ञा के निषेध का भी निषेध है।

**वाहयति रथं वाहान् सूतः।** सारथि घोड़ों से रथ चलवाता (खींचवाता) है। **सूत**=सारथि नियन्त्रण करने वाला कर्ता है। अण्यन्तावस्था का वाक्य है- **वाहाः रथं वहन्ति।** (वहन्ति इति वाहाः=अश्वाः) इसका कर्ता है- **वाहाः=घोड़े।** वहति को ण्यन्त करने पर **वाहयति** बनता है। गत्यर्थक होने के कारण अण्यन्तावस्था के प्रयोज्यकर्ता **वाह** की गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्मकर्मकाणामणिकर्ता **स णौ** से प्राप्त कर्मसंज्ञा का **नीवह्योर्न** वार्तिक से निषेध प्राप्त हुआ तो उसका भी **नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेधः** से अनिषेध होने पर पुनः उक्त सूत्र से ही कर्मसंज्ञा हो जाती है, फलतः द्वितीयाबहुवचन में **वाहान्** बन जाता है।

**आदिखाद्योर्न।** यह वार्तिक है। **कारके** का अधिकार तो है ही साथ ही प्रकृतसूत्र से **अणि, कर्ता, णौ** और **कर्तुरीप्सिततमं कर्म** से **कर्म** की अनुवृत्ति रहती है। वार्तिकार्थः- **अद्** और **खाद्** धातुओं के अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा नहीं होती। ये दोनों धातुयें प्रत्यवसानार्थक हैं, अतः प्रकृतसूत्र से अण्यन्तावस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा की प्राप्ति थी, उसका इस वार्तिक से निषेध किया गया है।

**आदयति खादयति वात्रं बटुना।** मूल में प्रदर्शित दोनों धातुओं का प्रयोग किया है। इसके दो वाक्य बनाने होंगे-

**आदयति अन्नं बटुना (देवदत्तः)।** देवदत्त बटु=बालक को अन्न खिलाता है। अण्यन्तावस्था का वाक्य है- **बटुः अन्नम् अत्ति।** इसका कर्ता है- **बटु।** भक्षणार्थक **अद्** धातु को ण्यन्त करने पर **आदयति** बनता है। प्रत्यवसानार्थक होने के कारण अण्यन्तावस्था के प्रयोज्यकर्ता **बटु** की गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्मकर्मकाणामणिकर्ता **स णौ** से कर्मसंज्ञा प्राप्त होने पर उसका **आदिखाद्योर्न** वार्तिक से निषेध हो जाने से द्वितीया नहीं हुयी, अपितु **कर्तृकरणयोस्तृतीया** से तृतीया होकर **बटुना** बन जाता है।

**खादयति अन्नं बटुना। (देवदत्तः)।** देवदत्त बटु को अन्न खिलाता है। अण्यन्तावस्था का वाक्य है- **बटुः अन्नं खादति।** इसका कर्ता है- **बटु।** भक्षणार्थक **खाद्** धातु को ण्यन्त करने पर **खादयति** बनता है। प्रत्यवसानार्थक होने के कारण अण्यन्तावस्था के प्रयोज्यकर्ता **बटु** की गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्मकर्मकाणामणिकर्ता **स णौ** से कर्मसंज्ञा प्राप्त होने पर उसका **आदिखाद्योर्न** वार्तिक से निषेध हो जाने से द्वितीया नहीं हुयी, अपितु **कर्तृकरणयोस्तृतीया** से तृतीया होकर **बटुना** बन जाता है।

**भक्षेरहिंसार्थस्य न।** यह वार्तिक है। पूर्व वार्तिकों की तरह इसमें भी **कारके** का अधिकार तो है ही साथ ही प्रकृतसूत्र से **अणिकर्ता, णौ** और **कर्तुरीप्सिततमं कर्म** से **कर्म** की अनुवृत्ति रहती है। वार्तिकार्थः- **अहिंसार्थक भक्ष्** धातु के अण्यन्त अवस्था

के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा नहीं होती। यह धातु प्रत्यवसानार्थक है, अतः प्रकृतसूत्र से अण्यन्तावस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा की प्राप्ति थी, उसका इस वार्तिक से निषेध किया गया है। भोजन, रोटी, अन्न खाना हिंसा नहीं है।

**भक्षयत्यन्नं बटुना (देवदत्तः)।** देवदत्त बटु को अन्न खिलाता है। भक्ष् धातु चुरादि की है। अतः स्वार्थिक णिच् होकर भक्षयति रूप बनता है। स्वार्थिक णिजन्त से प्रेरणा अर्थ में हेतुमति च पुनः णिच् होने पर प्रथम णिच् का णेरनिटि सूत्र से लोप होने से हेतुमण्यन्त में भी भक्षयति ही बनता है। स्वार्थिक ण्यन्तावस्था किन्तु प्रेरणार्थ में अण्यन्तावस्था का वाक्य है- **बटुः अन्नं भक्षयति।** इसका कर्ता है- **बटु।** भक्षणार्थक भक्ष् धातु को हेतुमान् ण्यन्त करने पर भी भक्षयति ही बना है। प्रत्यवसानार्थक होने के कारण अण्यन्तावस्था के प्रयोज्यकर्ता बटु की गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्मकर्मका- णामणिकर्ता स णौ कर्मसंज्ञा प्राप्त होने पर उसका भक्षेरहिंसार्थस्य न वार्तिक से निषेध हो जाने से द्वितीया नहीं हुयी, अपितु कर्तृकरणयोस्तृतीया से तृतीया होकर बटुना बन जाता है।

**अहिंसार्थस्य किम्? भक्षयति बलीवर्दान् सस्यम्।** प्रकृत वार्तिक में अहिंसार्थस्य पद का क्या प्रजोजन है? ताकि जो हिंसार्थक नहीं है, ऐसे भक्ष् धातु के अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्त अवस्था में कर्मसंज्ञा का निषेध हो किन्तु जो हिंसार्थक भक्ष् धातु होगा, उसके कर्ता की कर्मसंज्ञा हो जाय। जैसे कि भक्षयति बलीवर्दान् सस्यम् (बैलों को फसल (अन्न) खिलाता है)। यहाँ पर सामान्यावस्था है- **भक्षयन्ति बलीवर्दाः सस्यम्।** स्वार्थिक ण्यन्त किन्तु प्रेरणार्थक अण्यन्त अवस्था के कर्ता बलीवर्द की ण्यन्त अवस्था में कर्मसंज्ञा का निषेध नहीं हुआ अपितु प्रकृतसूत्र से ही कर्मसंज्ञा होकर बलीवर्दान् बन जाता है। पराया खेत चराने में हिंसा है। हरी फसल में अन्तःप्रज्ञ जीव की विद्यमानता मानी जाती है। अतः ऐसे फसल का विनाश हिंसा मानी जाती है।

**जल्पतिप्रभृतीनामुपसंख्यानम्।** यह भी वार्तिक है। इसमें भी कारके का अधिकार तो है ही साथ ही प्रकृतसूत्र से अणिकर्ता, णौ और कर्तुरीप्सिततमं कर्म से कर्म की अनुवृत्ति भी रहती है। वार्तिकार्थः- जल्प् आदि धातुओं के अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा होती है। प्रकृतसूत्र के पाँच प्रकार की धातुओं में जल्प् आदि धातुओं का अन्तर्भाव न होने के कारण कर्मसंज्ञा अप्राप्त होने पर तदर्थ इस वार्तिक का अवतरण किया गया है। वार्तिक में प्रभृति शब्द से व्याहरति, वदति आदि क्रियाओं का भी संग्रह मान लिया जाता है। भाष्य में तो जल्पति, विलपति, आभाषते को ही जल्पतिप्रभृति माना है। इस विषय में कुछ आचार्य मानते हैं कि जल्पत्यादि की यही परिगणना है अर्थात् इतनी ही धातुओं को जल्पत्यादि माना गया है। कुछ और आचार्य कहते हैं कि भाष्य में सम्पूर्ण जल्पत्यादि धातुओं का परिगणन नहीं है, अपितु उदाहरण मात्र दिया गया है, वास्तव में जल्पत्यादि बहुत धातुयें हैं।

**जल्पयति भाषयति वा धर्मं पुत्रं देवदत्तः।** मूलकार ने दो धातुओं का प्रयोग एक साथ दिया है। इनके दो वाक्य बनाने होंगे- जल्पयति धर्मं पुत्रं देवदत्तः और भाषयति धर्मं पुत्रं देवदत्तः।

**जल्पयति धर्मं पुत्रं देवदत्तः।** देवदत्त पुत्र से धर्म कहलवाता है। यहाँ पर अण्यन्तावस्था का वाक्य है- जल्पति धर्मं पुत्रः और इसका कर्ता है- पुत्र। ण्यन्तावस्था में जल्पयति बनता है। अण्यन्तावस्था के कर्ता पुत्र की जल्पतिप्रभृतीनामुपसंख्यानम् से कर्मसंज्ञा हो जाने पर द्वितीया होकर पुत्रम् बन जाता है।

**भाषयति धर्मं पुत्रं देवदत्तः।** देवदत्त पुत्र से धर्म कहलवाता है। यहाँ पर अण्यन्तावस्था का वाक्य है- भाषते धर्मं पुत्रः और इसका कर्ता है- पुत्र। ण्यन्तावस्था में भाषयति बनता है। अण्यन्तावस्था के कर्ता पुत्र की जल्पतिप्रभृतीनामुपसंख्यानम् से कर्मसंज्ञा हो जाने पर द्वितीया होकर पुत्रम् बन जाता है।

**दृशेश्च।** यह भी वार्तिक है। कारके का अधिकार तो है ही साथ ही प्रकृतसूत्र से अणि, कर्ता, णौ और कर्तुरीप्सिततमं कर्म से कर्म की अनुवृत्ति रहती है। वार्तिकार्थः- दृश् धातु के अण्यन्त अवस्था के कर्ता (प्रयोज्य कर्ता) की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा होती है। प्रकृतसूत्र में उल्लेखित पाँच प्रकार की धातुओं दृश् धातु का अन्तर्भाव न होने कर्मसंज्ञा अप्राप्त होने पर इस वार्तिक का अवतरण किया गया है।

**दर्शयति हरिं भक्तान्।** (पुजारी) भक्तों को हरि का दर्शन कराता है। यहाँ पर अण्यन्तावस्था का वाक्य है- भक्ताः हरिं पश्यन्ति और इसका कर्ता है- भक्त। दृश्-धातु के ण्यन्तावस्था में दर्शयति बनता है। अण्यन्तावस्था के कर्ता भक्त की दृशेश्च वार्तिक से कर्मसंज्ञा हो जाने पर द्वितीया होकर भक्तान् बन जाता है।

**सूत्रे ज्ञानसामान्यार्थानामेव ग्रहणम्, न तु तद्विशेषार्थानामित्यनेन ज्ञाप्यते।** अर्थात् गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ० सूत्र में गृहीत बुद्धि शब्द से सामान्य ज्ञान (जानना) मात्र अर्थ को प्रकट करने वाली धातुओं का ग्रहण है किन्तु तद्विशेषार्थ=ज्ञानविशेषार्थ स्मृ, घ्रा,

दृश् आदि धातुओं का ग्रहण नहीं है, यह बात अनेन=दृशेश्च वार्तिक के द्वारा ज्ञापित होती है। यद्यपि देखने, सुनने, सूँघने, स्पर्श करने से भी ज्ञान ही होता है तथापि ये ज्ञानविशेष माने जाते हैं और जानना अर्थ ज्ञानसामान्य कहलाता है। यदि प्रकृतसूत्र के बुद्धि शब्द से ज्ञानविशेषवाची धातुओं का भी ग्रहण होता तो दृशेश्च वार्तिक की कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ती। वार्तिककार ने उक्त वार्तिक बनाया है, अतः ज्ञापित होता है कि सूत्र में ज्ञानसामान्यवाची धातुओं का ही ग्रहण है।

तेन स्मरति जिघ्रतीत्यादीनां न। स्मारयति घ्रापयति वा देवदत्तेन। तेन=प्रकृतसूत्र के बुद्धि शब्द से ज्ञानसामान्य अर्थ वाली धातुओं का ही ग्रहण होने से, ज्ञानविशेषवाची स्मृ, घ्रा आदि धातुओं के रूप (स्मरति, जिघ्रति के) अण्यन्तावस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा प्रकृतसूत्र से नहीं हो पाती। अतः स्मारयति देवदत्तेन, घ्रापयति देवदत्तेन ऐसे तृतीयान्त प्रयोग किया जाता है। देवदत्तः स्मरति, तं यज्ञदत्तः प्रयुङ्क्ते- यज्ञदत्तो देवदत्तेन स्मारयति (यज्ञदत्त देवदत्त से याद करवाता है)। देवदत्तो जिघ्रति, तं यज्ञदत्तः प्रयुङ्क्ते- यज्ञदत्तो देवदत्तेन घ्रापयति (यज्ञदत्त देवदत्त से सुँघाता है)।

शब्दायतेर्न। यह वार्तिक है। कारके का अधिकार तो है ही साथ ही प्रकृतसूत्र से अणि, कर्ता, णौ और कर्तुरीप्सिततमं कर्म से कर्म की अनुवृत्ति रहती है। वार्तिकार्थः- शब्दाय धातु की अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा नहीं होती। यहाँ शब्दं करोति अर्थ में शब्द+अम् से शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेधेभ्यः करणे सूत्र से क्यङ् प्रत्यय होने पर क्यङ्-प्रत्ययान्त की सनाद्यन्ता धातवः से धातुसंज्ञा, सुपो धातुप्रातिपदिकयोः से अम् का लुक् होकर शब्द+य बनने के बाद अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः सूत्र से दीर्घ होकर शब्दाय धातु बनी है। इसका अण्यन्त रूप शब्दायते और ण्यन्तरूप शब्दाययति है।

शब्दाययति देवदत्तेन। कोई देवदत्त से हल्ला करवाता है। अण्यन्तावस्था का वाक्य है- देवदत्तः शब्दं करोति (देवदत्त शब्द करता है)। इसका कर्ता है- देवदत्त। शब्दाय धातु को ण्यन्त करने पर भी शब्दाययति ही बना है। अकर्मक धातु होने के कारण अण्यन्तावस्था के प्रयोज्यकर्ता देवदत्त की ण्यन्तावस्था में गतिबुद्धिप्रत्ययवसानार्थ- शब्दकर्मकर्मकाणामणि कर्ता स णौ कर्मसंज्ञा प्राप्त होने पर उसका शब्दायतेर्न वार्तिक से निषेध हो जाने से द्वितीया नहीं हुयी, अपितु कर्तृकरणयोस्तृतीया से तृतीया होकर देवदत्तेन बन जाता है।

अब यहाँ यह प्रश्न है कि क्यङन्त शब्दाय धातु को किस कोटि में मानकर प्रकृतसूत्र से प्राप्ति थी? इसका समाधान मूलकार कर रहे हैं-

धात्वर्थसंगृहीतकर्मत्वेन अकर्मकत्वात् प्राप्तिः। जिन धातुओं के अर्थ में कर्म संगृहीत होता है, उनको अकर्मक माना जाता है और शब्दाय धातु के अर्थ में कर्म संगृहीत हुआ होता है। अतः अकर्मक मानकर के प्रकृतसूत्र से प्राप्ति थी, जिसका प्रकृत वार्तिक से निषेध किया गया है। शब्दाय धातु से शब्द करना अर्थ अभिलक्षित है। अतः इसमें अकर्मकत्व स्पष्ट है।

अकर्मक धातुयें दो तरह की होती हैं। प्रथम तो जिसमें किसी भी स्थिति में कर्म लग ही नहीं सकता और दूसरी उन धातुओं में भी अकर्मकत्वेन व्यवहार होता है जिनमें कर्म के लगने की योग्यता तो होती है किन्तु कर्म की विवक्षा नहीं की जाती। प्रकृतसूत्र में प्रथम प्रकार की धातुओं का अकर्मकत्वेन ग्रहण है अथवा द्वितीय प्रकार की अकर्मक धातुओं का? इस प्रश्न का समाधान मूलकार कर रहे हैं-

येषां देशकालादिभिन्नं कर्म न संभवति तेऽत्राकर्मकाः, न त्वविवक्षित- कर्माणोऽपि। अर्थात् जिनका देश और काल से भिन्न कर्म सम्भव ही न हो, ऐसी धातुयें ही प्रकृत सूत्र में अकर्मक मानी गयी हैं परन्तु जिनमें कर्म अविवक्षित हो, उन्हें यहाँ अकर्मक नहीं कहा गया है।

तेन 'मासमासयति देवदत्तम्' इत्यादौ कर्मत्वं भवति, 'देवदत्तेन पाचयति' इत्यादौ तु न। अर्थात् तेन=देश और काल से भिन्न कर्म जिन धातुओं में सम्भव ही नहीं है, ऐसी धातुओं का प्रकृतसूत्र में अकर्मकत्वेन गृहीत होने के कारण मासम् आसयति देवदत्तम् में अण्यन्तावस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा हो जाती है किन्तु देवदत्तेन पाचयति में अण्यन्तावस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा नहीं होती। अतः निम्नलिखित में कर्मसंज्ञा होती है। यथा-

मासम् आसयति देवदत्तम्। देवदत्त को एक मास तक बिठाता है। मासम् आस्ते देवदत्तः यह सामान्य अवस्था है। आस् धातु अकर्मक है। इसमें देश, काल के अतिरिक्त अन्य कोई कर्म सम्भव नहीं है। अतः अण्यन्त अवस्था के कर्ता देवदत्त की ण्यन्तावस्था में गतिबुद्धि० सूत्र से ही कर्मसंज्ञा होकर देवदत्तं मासम् आसयति वाक्य बनता है। यहाँ पर मासम् कर्म के रहते हुये भी धातु को अकर्मक ही माना गया है, क्योंकि उपर्युक्त नियम से देश, काल से भिन्न कर्म के लगने की योग्यता होने पर ही प्रकृतसूत्र में धातु को अकर्मक माना जाता है।

देवदत्तेन पाचयति। देवदत्त से (ओदन) पकवाता है। देवदत्तः पचति यह सामान्यावस्था है। इसका प्रयोज्यकर्ता देवदत्त है। पच् धातु में देश, काल से भिन्न कर्म सम्भव होते हैं। यद्यपि प्रकृतवाक्य में कर्म की अविवक्षा की गयी है तथापि कर्म लगने की योग्यता है। उपर्युक्त नियम से इस अविवक्षितकर्म पच् धातु को अकर्मक नहीं माना जा सकता। अतः अकर्मक धातु को मानकर गतिबुद्धिप्रत्ययवसानार्थ० से होने वाली कर्मसंज्ञा यहाँ नहीं हो सकती। अतः देवदत्तं पाचयति न होकर देवदत्तेन पाचयति बन जाता है। यहाँ पर कर्म की विवक्षा न किये जाने के कारण पच्-धातु अकर्मक है किन्तु प्रकृतसूत्र से अविवक्षितकर्म वाली धातुयें अकर्मत्वेन गृहीत नहीं होतीं।

५४१. हक्रोरन्यतरस्याम् १।४।५३॥

हक्रोरणौ यः कर्ता स णौ वा कर्मसंज्ञः स्यात्।

हारयति कारयति वा भृत्यं भृत्येन वा कटम्।

‘अभिवादिदृशोरात्मनेपदे वेति वाच्यम्’ (वा.१११४)।

अभिवादयते दर्शयते देवं भक्तं भक्तेन वा।

हक्रोरन्यतरस्याम्। हा च क्रा च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो हक्रौ, तयोः हक्रोः। हक्रोः षष्ठीद्विवचनान्तम्, अन्यतरस्याम् विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम्। कारके का अधिकार है। गतिबुद्धिप्रत्ययवसानार्थशब्दकर्मकर्मकाणामणि कर्ता स णौ से णौ, कर्ता, अणि की और कर्तुरीप्सिततमं कर्म से कर्म की अनुवृत्ति आती है।

ह तथा कृ धातुओं के अण्यन्तावस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा होती है।

अन्यतरस्याम् पद विकल्पार्थ का बोधक है। इस सूत्र की अप्रवृत्ति में कर्तृकरणयोस्तृतीया से तृतीया विभक्ति हो जाती है।

हारयति कारयति वा भृत्यं भृत्येन वा कटम्। मूलकार ने चार वाक्यों को एकसाथ ही दिया है। हमें इसके पृथक् वाक्य बनाने होंगे। जैसे कि हारयति भृत्यं कटम्, हारयति भृत्येन कटम् और कारयति भृत्यं कटम्, कारयति भृत्येन कटम्।

हारयति भृत्यं कटम्, हारयति भृत्येन कटम्। नौकर से चटाई ढोवाता है। हृ-धातु का प्रयोग है। अण्यन्तावस्था है-भृत्यः कटं हरति (नौकर चटाई ले जाता है)। ण्यन्त होने पर हारयति बनता है। अण्यन्तावस्था के कर्ता भृत्य की ण्यन्तावस्था में हक्रोरन्यतरस्याम् सूत्र से विकल्प से कर्मसंज्ञा होने पर द्वितीया होकर हारयति भृत्यं कटम् वाक्य बनता है और कर्मसंज्ञा न होने के पक्ष में तृतीया होकर हारयति भृत्येन कटम् बन जाता है।

कारयति भृत्यं कटम्, कारयति भृत्येन कटम्। नौकर से चटाई बनवाता है। कृ-धातु का प्रयोग है। अण्यन्तावस्था है-भृत्यः कटं करोति (नौकर चटाई बनाता है)। ण्यन्त होने पर कारयति बनता है। अण्यन्तावस्था के कर्ता भृत्य की ण्यन्तावस्था में हक्रोरन्यतरस्याम् सूत्र से विकल्प से कर्मसंज्ञा होने पर द्वितीया होकर कारयति भृत्यं कटम् वाक्य बनता है और कर्मसंज्ञा न होने के पक्ष में तृतीया होकर कारयति भृत्येन कटम् बन जाता है।

अभिवादिदृशोरात्मनेपदे वेति वाच्यम्। यह वार्तिक है। अन्यतरस्याम्, अणिकर्ता, णौ, कर्म इन पदों की अनुवृत्ति है। वार्तिकार्थः- आत्मनेपद का प्रयोग होने पर अभि-पूर्वक वद् तथा केवल दृश् धातुओं की अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में विकल्प से कर्मसंज्ञा होती है। जब धातु से णिच् प्रत्यय होता है तो णिजन्त धातु से णिचश्च सूत्र के द्वारा कर्तृगामी क्रियाफल होने पर आत्मनेपद अन्यथा परस्मैपद का प्रयोग होता है। इस तरह णिजन्त धातुयें प्रायः उभयपदी हुआ करती हैं। जब णिजन्त आत्मनेपद प्रयोग में आये, तभी यह वार्तिक लगता है। आत्मनेपद का प्रयोग न होने पर कर्मसंज्ञा नहीं होती, वहाँ तृतीया विभक्ति हो जाती है।

अभिवादयते दर्शयते देवं भक्तं भक्तेन वा। मूलोक्त इस उदाहरण में दो धातुओं के चार उदाहरण बनते हैं-अभिवादयते देवं भक्तम्, अभिवादयते देवं भक्तेन और दर्शयते देवं भक्तम्, दर्शयते देवं भक्तेन।

अभिवादयते देवं भक्तम्। (अर्चक) भक्तों से देव का अभिवादन कराता है। अभि-पूर्वक वद्-धातु का नमस्कार करना अर्थ है। सामान्यावस्था (अण्यन्तावस्था) का वाक्य है अभिवदति देवं भक्तः और इसका कर्ता है- भक्तः। अभिवदति से ण्यन्त होने पर आत्मनेपद में अभिवादयते बन जाता है। अभिवादिदृशोरात्मनेपदे वेति वाच्यम् वार्तिक से अण्यन्तावस्था के कर्ता भक्त की विकल्प से कर्मसंज्ञा होने पर द्वितीया विभक्ति होकर अर्चकोऽभिवादयते देवं भक्तम् बन जाता है और कर्मसंज्ञा न होने के पक्ष

में अर्चकोऽभिवादयते देवं भक्तेन। धातु के आत्मनेपद में प्रयोग न होने पर पाक्षिक कर्मसंज्ञा भी नहीं होती। अतः अभिवादयति देवं भक्तेन बनेगा।

दर्शयते देवं भक्तं भक्तेन वा। (अर्चक) भक्तों को देव का दर्शन कराता है। दृश्-धातु का दर्शन करना अर्थ है। सामान्यावस्था (अण्यन्तावस्था) का वाक्य है पश्यति देवं भक्तः और इसका कर्ता है- भक्तः। दृश् धातु के ण्यन्त होने पर आत्मनेपद में दर्शयते बन जाता है। अभिवादिदृशोरात्मनेपदे वेति वाच्यम् वार्तिक से अण्यन्तावस्था के कर्ता भक्त की विकल्प से कर्मसंज्ञा होने पर द्वितीया विभक्ति होकर अर्चको दर्शयते देवं भक्तम् बन जाता है और कर्मसंज्ञा न होने के पक्ष में अर्चको दर्शयते देवं भक्तेन। आत्मनेपद का प्रयोग न होने पर तो दर्शयति देवं भक्तेन बनता है।

विशेष- प्रकृतसूत्र प्राप्ताप्राप्तविभाषा (उभयत्र-विभाषा) के लिये है। एतदर्थ ही अन्यतरस्याम् पद का प्रयोग हुआ है। जहाँ उपसर्गवश ह् धातु गत्यर्थक अथवा प्रत्यवसानार्थ होता है तो इसके अण्यन्तावस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्मकर्मकाणामणि कर्ता स णौ से नित्य से कर्मसंज्ञा प्राप्त हो जाती है और उसको बाधकर प्रकृतसूत्र से विकल्प से की जाती है और जहाँ ह् धातु चुराना अर्थ में होती हैं वहाँ उक्त सूत्र नहीं लगता। इसी प्रकार विकारार्थ होने पर कृ-धातु के अकर्मक होने से पूर्व सूत्र से ही प्राप्त है तथा तद्धित अर्थों में नहीं। अतः अप्राप्त रहते प्रकृतसूत्र से विकल्प से कर्मसंज्ञा की जाती है। इस तरह प्राप्त एवं अप्राप्त दोनों स्थलों में विकल्प से करने के कारण प्रकृतसूत्र प्राप्ताप्राप्त (उभयत्र) विभाषा है।

अभिवादिदृशोरात्मनेपदे वेति वाच्यम् वार्तिक में गृहीत अभिपूर्वक वद्-धातु नमस्कारक्रियावाची है और इसका ग्रहण गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्मकर्मकाणामणि- कर्ता स णौ में नहीं हो पाता। अतः अप्राप्त कर्मसंज्ञा का प्रकृत वार्तिक से विकल्प से किया गया। इसी तरह दृश् धातु की दशा में दृशेश्च वार्तिक से नित्य से कर्मसंज्ञा प्राप्त थी और प्रकृत वार्तिक से विकल्प से की गयी। अतः यह वार्तिक भी उभयत्रविभाषा है।

ण्यन्त और अण्यन्त की बात पूरी हो गयी। अब आधार की कर्मसंज्ञा की जा रही है। अष्टाध्यायीक्रम में वक्ष्यमाण अग्रिम सूत्र से पहले आधारोऽधिकरणम् सूत्र आता है और तत्रोक्त आधार का ही यहाँ पर ग्रहण किया जायेगा।

## ५४२. अधिशीङ्स्थाऽऽसां कर्म १।४।४६॥

अधिपूर्वाणामेषामाधारः कर्म स्यात्।

अधिशेते अधितिष्ठति अध्यास्ते वा वैकुण्ठं हरिः।

अधिशीङ्स्थासां कर्म। शीङ् च स्थाश्च आस् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः शीङ्स्थासः, अधेः शीङ्स्थासोऽधिशीङ्स्थासस्तेषामधिशीङ्स्थासाम्, इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भ- पञ्चमीतत्पुरुषः। अधिशीङ्स्थासाम् षष्ठीबहुवचनान्तं, कर्म प्रथमान्तम्। कारके का अधिकार है और आधारोऽधिकरणम् से आधारः की अनुवृत्ति आती है। द्वन्द्व के आदि में पठित अधि शब्द का तीनों धातुओं के साथ योग है।

अधिपूर्वक शी, स्था, आस् धातुओं के आधार की कर्मसंज्ञा होती है।

सूत्र में शीङ् स्वप्ने, ष्टा गतिनिवृत्तौ और आस् उपवेशने धातुओं का ग्रहण है। अधिपूर्व होने पर अधि+शी, अधि+स्था, अधि+आस् बन जाते हैं। इन क्रियाओं का जो आधार बनता है, उसकी कर्मसंज्ञा की जा रही है। औपश्लेषिक, वैषयिक और अभिव्यापक के भेद से आधार तीन प्रकार का होता है किन्तु प्रकृतसूत्र में गृहीत धातुओं के साथ तो औपश्लेषिक=संयोगादिसम्बन्ध वाला आधार ही गृहीत होगा।

अधिशेते वैकुण्ठं हरिः। हरि वैकुण्ठ में सोते हैं। इस वाक्य का कर्ता हरिः है और अधिशेते का आधार वैकुण्ठ है। अतः उसकी अधिशीङ्स्थासां कर्म से कर्मसंज्ञा हो जाती है, फलतः कर्मणि द्वितीया से अनुक्त कर्म में द्वितीया विभक्ति होकर हरिः वैकुण्ठम् अधिशेते वाक्य बन जाता है। यदि धातु अधि-पूर्व न हो तो इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती है अपितु आधारोऽधिकरणम् से वैकुण्ठ की अधिकरणसंज्ञा होकर सप्तम्यधिकरणे च से सप्तमी विभक्ति होकर हरिः वैकुण्ठे शेते ऐसा वाक्य बनेगा।

अधितिष्ठति वैकुण्ठं हरिः। हरि वैकुण्ठ में रहते हैं। यहाँ पर भी क्रिया का आधार वैकुण्ठ ही है। अतः उसकी अधिशीङ्स्थासां कर्म से कर्मसंज्ञा हो जाती है और अनुक्त कर्म में द्वितीया विभक्ति होकर हरिः वैकुण्ठम् अधितिष्ठति वाक्य बन जाता है। अधि-पूर्व न हो तो अधिकरणसंज्ञा होकर सप्तमी होने पर हरिः वैकुण्ठे तिष्ठति ऐसा वाक्य बनेगा।

अध्यास्ते वैकुण्ठं हरिः। हरि वैकुण्ठ में हैं। यहाँ पर स्थिति क्रिया का आधार वैकुण्ठ ही है। अतः उसकी अधिशीङ्स्थासां कर्म से कर्मसंज्ञा हो जाती है और अनुक्त कर्म में द्वितीया विभक्ति होकर हरिः वैकुण्ठम् अध्यास्ते वाक्य बन जाता है। अधि+आस्ते में यण् तो होता ही है। अधि-पूर्व न हो तो अधिकरणसंज्ञा होकर सप्तमी होने पर हरिः वैकुण्ठे आस्ते ऐसा वाक्य बनेगा।

यद्यपि ये तीनों धातुयें अकर्मक हैं तथापि प्रकृतसूत्र आधार की कर्मसंज्ञा होने से सकर्मक हो जाते हैं।

### ५४३. अभिनिविशश्च १।४।४७॥

अभि-नीत्येतत्संघातपूर्वस्य विशतेराधारः कर्म स्यात्।

अभिनिविशते सन्मार्गम्। 'परिक्रयणे संप्रदानम्-' (सू.५८०) इति सूत्रादिह मण्डूकप्लुत्या अन्यतरस्यां ग्रहणमनुवर्त्य व्यवस्थितविभाषाश्रयणात् क्वचिन्न। पापेऽभिनिवेशः।

अभिनिविशश्च। अभिश्च निश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वोऽभिनी, ताभ्यां परो विश् अभिनिविश्, तस्मात् अभिनिविशः। द्वन्द्वगर्भपञ्चमीतत्पुरुषः। अभिनिविशः षष्ठ्येकवचनान्तं, चाव्ययम्। अधिशीङ्स्थासां कर्म से कर्म का तथा आधारोऽधिकरणम् से आधारः की अनुवृत्ति आती है। कारके का अधिकार है।

अभि+नि इस समुदाय के पूर्व में रहते जो विश्-धातु, उसके आधार की कर्मसंज्ञा होती है।

अभिनि इत्येतत्संघात=अभि+नि इस समुदाय का ग्रहण है। अभिनिविशः इस पद के अनुसार यदि विश् धातु से पूर्व अभि तथा नि इन उपसर्गों का (क्रमशः) समुदाय रहे अर्थात् अभिनिविशते ऐसा प्रयोग रहे तभी इसके आधार की कर्मसंज्ञा होती है। केवल एक उपसर्ग भी नहीं होना चाहिये और उपसर्ग का व्यत्यास न्यभि भी नहीं होना चाहिये। भाष्यकार के अनुसार न तो अभि और नि उपसर्गों का पृथक्-पृथक् प्रयोग हो सकता है और न ही इनका क्रम परिवर्तित हो सकता है। इसमें सूत्रपाठ ज्ञापक है। वह इस प्रकार कि यदि अभि+नि का अविकल संघात अभीष्ट न होता तो पाणिनि इस सूत्र को न्यभिनिविशश्च इस रूप में पढ़ते। क्योंकि अभि और नि में द्वन्द्वसमास होने के बाद अल्पाक्षरम् सूत्र से नि का पूर्वनिपात प्राप्त होता है। ऐसा करने पर अर्धमात्रा का लाघव भी होता है। यहाँ आचार्य ने नि का पूर्वनिपातन न करके यह ज्ञापित किया है कि अभि+नि इस अविकल संघात का ग्रहण करना चाहिये अर्थात् अभिनि पूर्वक विश् धातु का ग्रहण करना चाहिये, न कि अभि+विश्, नि+विश्, न्यभि+विश् का।

अभिनिविशते सन्मार्गम्। सन्मार्ग पर मन लगाता है। देवतादि कर्ता का अध्याहार करना चाहिये। अभिनिवेश का आधार सन्मार्ग है। अतः उसको प्राप्त अधिकरणसंज्ञा का बाध करके अभिनिविशश्च सूत्र से कर्मसंज्ञा हो जाने से कर्मणि द्वितीया से द्वितीया विभक्ति होकर अभिनिविशते सन्मार्गम् बन जाता है।

'परिक्रयणे संप्रदानम्-' इति सूत्रादिह मण्डूकप्लुत्या अन्यतरस्यां ग्रहणमनुवर्त्य व्यवस्थितविभाषाश्रयणात् क्वचिन्न। पापेऽभिनिवेशः। अर्थात् यहाँ परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम् (१.४.४४) सूत्र से मण्डूकप्लुतिन्याय (आगे के सूत्रों में लगातार अनुवृत्ति न जाकर अर्थात् बीच के सूत्रों का छोड़कर सम्बन्धित सूत्र में अनुवृत्ति जाने) से अन्यतरस्याम् पद का अनुवर्तन किया जाता है और उक्त अन्यतरस्याम् को व्यवस्थितविभाषा मान लिया जाता है। व्यवस्थितविभाषा का तात्पर्य होता है- कहीं विधिमुख से प्रवृत्त होना और कहीं निषेधमुख से। अतः किन्हीं जगहों पर इस सूत्र की नित्य से प्रवृत्ति होगी और क्वचित् न=कहीं बिल्कुल प्रवृत्ति ही नहीं होगी। जैसे कि अभिनिविशते सन्मार्गम् में नित्य विधिमुख से प्रवृत्ति हुयी है और पापेऽभिनिवेशः में प्रवृत्ति ही नहीं होती। अभिनिवेशः में अभिनि-पूर्वक विश् धातु ही है। व्यवस्थितविभाषा होने से आधारभूत पाप शब्द की कर्मसंज्ञा नहीं हुयी किन्तु आधार में अधिकरणसंज्ञा होकर सप्तमी हो जाती है। अष्टाध्यायीक्रम में परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम् और अभिनिविशश्च के बीच में आधारोऽधिकरणम् और अधिशीङ्स्थासां कर्म ये दो सूत्र पढ़े गये हैं। उक्त दो सूत्रों में अन्यतरस्याम् की अनुवृत्ति न होने से मण्डूकप्लुतिन्याय का आश्रय लेना पड़ा है। उक्त अन्यतरस्याम् के व्यवस्थितविभाषा होने में समर्थः पदविधिः सूत्र के भाष्य में प्रयुक्त एष्वर्थेऽभिनिविष्टानाम् यह भाष्यकार का प्रयोग प्रमाण है। उन्होंने अभि+नि-पूर्वक विश् धातु से क्त प्रत्यय होकर निष्पन्न अभिनिविष्ट शब्द के योग में द्वितीयान्त का प्रयोग न करके एषु अर्थेषु इस तरह सप्तम्यन्त का प्रयोग किया है। अतः यह सिद्ध है कि मण्डूकप्लुत्या अनुवृत्त अन्यतरस्याम् यहाँ पर व्यवस्थित विभाषा के रूप में है।

### ५४४. उपान्वध्याङ्वसः १।४।४८॥

उपादिपूर्वस्य वसतेराधारः कर्म स्यात्। उपवसति अनुवसति अधिवसति आवसति वा वैकुण्ठं हरिः।  
'अभुक्त्यर्थस्य न' (वा.१०८७)। वने उपवसति।

उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु।

द्वितीयाऽऽप्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते॥'(वा.१४४४)।

उभयतः कृष्णं गोपाः। सर्वतः कृष्णम्। धिक् कृष्णाभक्तम्। उपर्युपरि लोकं हरिः। अध्यधि लोकम्। अधोऽधो लोकम्।  
'अभितःपरितःसमया-निकषा-हा-प्रति-योगेऽपि' (वा.१४४२-१४४३)। अभितः कृष्णम्। परितः कृष्णम्। ग्रामं  
समया। निकषा लङ्काम्। हा कृष्णाभक्तम्, तस्य शोच्यत इत्यर्थः। 'बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित्'।

उपान्वध्याङ्वसः। उपश्च अनुश्च अधिश्च आङ् च उपान्वध्याङ्, तेभ्यः परो वस् उपान्वध्याङ्वस्, तस्मात्  
उपान्वध्याङ्वसः, इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भपञ्चमीतत्पुरुषः, पञ्चम्येकवचनान्तमेकपदं सूत्रम्। अथवा उपान्वध्याङ् पूर्वो यस्य स  
उपान्वध्याङ्पूर्वः, उपान्वध्याङ्पूर्वो वस् ऐसे विग्रह में शाकपार्थिवादि उत्तरपदलोपी समास करके भी उपान्वध्याङ्वस् बन जाता है।  
पञ्चम्यन्त तो है ही। कारके का अधिकार है। अधिशीङ्स्थासां कर्म से कर्म की आधारोऽधिकरणम् से आधारः की अनुवृत्ति  
आती है।

उप, अनु, अधि, आङ् पूर्वक वस् धातु के आधार की कर्मसंज्ञा होती है।

उप, अनु, अधि तथा आङ् ये उपसर्ग हैं। प्रत्येक के साथ वस् का योग है। पूर्वसूत्र की तरह यहाँ संघात का ग्रहण नहीं  
है। आधार की अधिकरणसंज्ञा प्राप्त होने पर उसका यह अपवाद है।

उपवसति अनुवसति अधिवसति आवसति वा वैकुण्ठं हरिः। कौमुदी में चारों उपसर्गों का उदाहरण एक साथ दिया गया  
है। इसके चार वाक्य बनते हैं- उपवसति वैकुण्ठं हरिः, अनुवसति वैकुण्ठं हरिः, अधिवसति वैकुण्ठं हरिः, आवसति वैकुण्ठं  
हरिः।

उपवसति वैकुण्ठं हरिः। हरि वैकुण्ठ में रहते हैं। इस वाक्य का कर्ता है- हरिः और क्रियापद है उपवसति। निवास का  
आधार वैकुण्ठ है। आधार होने के कारण उसकी आधारोऽधिकरणम् से अधिकरणसंज्ञा प्राप्त थी, उसे बाधकर उपान्वध्याङ्वसः से  
कर्मसंज्ञा होने पर कर्मणि द्वितीया से द्वितीया विभक्ति होकर वैकुण्ठम् बन जाता है।

इसी तरह निम्नलिखित प्रयोगों में भी समझना चाहिये।

अनुवसति वैकुण्ठं हरिः। हरि वैकुण्ठ में रहते हैं।

अधिवसति वैकुण्ठं हरिः। हरि वैकुण्ठ में रहते हैं।

आवसति वैकुण्ठं हरिः। हरि वैकुण्ठ में रहते हैं।

अभुक्त्यर्थस्य न। यह वार्तिक है। अभुक्ति का अर्थ है- भोग न होना, भूखे रहना, उपवास करना। प्रकृत सूत्र का इस  
वार्तिक में अविकल अनुवर्तन है और आधारः तथा कर्म की भी अनुवृत्ति है। वार्तिकार्थः- उपवास करना अर्थ में वर्तमान उप-पूर्वक  
वस्-धातु के आधार की कर्मसंज्ञा नहीं होती। यह वार्तिक प्रकृतसूत्र से प्राप्त कर्मसंज्ञा का निषेध करता है। इस तरह यदि उप+वस्  
का रहना, निवास करना अर्थ हो तो कर्मसंज्ञा होती है किन्तु उपवास करना अर्थ होने पर कर्मसंज्ञा नहीं होती, यह फलितार्थ  
बनता है।

वने उपवसति। वन में उपवास करता है। यद्यपि उपवसति का आधार वन है तथापि अभुक्त्यर्थस्य न वार्तिक से आधार  
की कर्मसंज्ञा का निषेध हो जाने से आधारोऽधिकरणम् सूत्र से अधिकरण होकर सप्तम्यधिकरणे च सूत्र से सप्तमी हो जाती है-  
वने।

यहाँ तक कारके सूत्र के अधिकार में कारक में द्वितीया विभक्ति का विधान किया गया। अब उपपदविभक्ति बतायी जा  
रही है। उपपदविभक्ति का तात्पर्य यह है किसी अन्य पद के संयोग, सम्बन्ध, अन्वय, योग आदि से होने वाली विभक्ति। इस तरह  
की द्वितीया विभक्ति बतायी जा रही है। सर्वप्रथम श्लोकवार्तिक है।

उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु।

**द्वितीयाऽऽप्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते।** यह महाभाष्य में पठित श्लोक वार्तिक है। वार्तिकार्थ है- तस् प्रत्ययान्त उभ और सर्व शब्दों के योग में, धिक्-शब्द के योग में ऊपरि आदि तीन शब्द अर्थात् ऊपरि, अधि, अधस् ये शब्द आप्रेडितान्त (कृतद्विवचान्त) हो तो इनके योग में रहने वाले दूसरे शब्दों में **द्वितीया कार्या**=द्वितीया विभक्ति करनी चाहिये, ततः **अन्यत्र अपि दृश्यते**=उपर्युक्त शब्दों के अतिरिक्त अन्य शब्दों के योग में भी कहीं-कहीं द्वितीया विभक्ति देखी जाती है। सूत्र और वार्तिक में जहाँ पर **दृश्यते** शब्द का प्रयोग होता है, वहाँ उसका सर्वत्र प्रवृत्ति नहीं मानी जाती किन्तु जहाँ पर इस तरह का शिष्ट प्रयोग देखा जाता है, वहाँ पर प्रवृत्ति माननी चाहिये।

इस वार्तिक के चार खण्ड बनाकर व्याख्या करनी चाहिये- **उभसर्वतसोः द्वितीया कार्या।** तद्धित प्रकरण में **तसि** प्रत्यय होता है, उसी का ग्रहण प्रकृत वार्तिक में है। **तसि** प्रत्यय का **उभ** तथा **सर्व** दोनों शब्दों के साथ सम्बन्ध करके **उभयतः, सर्वतः** बना लिया जाता है। अतः तस्-प्रत्ययान्त **उभयतः** शब्द तथा तस्-प्रत्ययान्त **सर्वतः** शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है।

**धिक् इति योगे द्वितीया कार्या।** अर्थात् धिक् शब्द के योग में द्वितीया विभक्ति करनी चाहिये है।

**उपर्यादिषु त्रिषु आप्रेडितान्तेषु द्वितीया कार्या।** आप्रेडितान्त उपरि आदि तीन शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति करनी चाहिये। **उपर्यादि** शब्द के द्वारा **उपरि, अधि, अधस्** इन तीन शब्दों का ग्रहण होता है। शब्द को द्वित्व होने पर द्वितीय रूप की **तस्य परमाप्रेडितम्** सूत्र से आप्रेडितसंज्ञा होती है, उन्हीं का यहाँ पर ग्रहण है। **आप्रेडितान्तेषु** शब्द से द्वित्व किया जा चुका है, ऐसा बोध होता है।

**ततोऽन्यत्रापि द्वितीया दृश्यते।** उक्त स्थानों से अन्यत्र भी द्वितीया विभक्ति दृष्टिगोचर होती है। ध्यान रहे कि उपपदविभक्ति में कर्मसंज्ञा की आवश्यकता नहीं है, सीधे विभक्ति का विधान होता है। इन सबके उदाहरण आगे बताये जा रहे हैं।

**उभयतः कृष्णं गोपाः।** कृष्ण के दोनों ओर गोप हैं। यहाँ तस्-प्रत्ययान्त **उभयतः** का योग है। अतः इसके योग में **कृष्ण** शब्द में **उभसर्वतसोः कार्या०** श्लोकवार्तिक से द्वितीयाविभक्ति किये जाने पर **उभयतः कृष्णं गोपाः** वाक्य सिद्ध हो जाता है।

**सर्वतः कृष्णम् ( गावः )।** कृष्ण के चारों ओर गाय हैं। यहाँ तस्-प्रत्ययान्त **सर्वतः** का योग है। अतः इसके योग में **कृष्ण** शब्द में **उभसर्वतसोः कार्या०** श्लोकवार्तिक से द्वितीयाविभक्ति किये जाने पर **सर्वतः कृष्णं गावः** वाक्य सिद्ध हो जाता है।

**धिक् कृष्णाभक्तम्।** कृष्ण के अभक्त को धिक्कार है। यहाँ पर निन्दा अर्थ में **धिक्** शब्द का प्रयोग है। उसके योग में **कृष्णाभक्त** शब्द में **उभसर्वतसोः कार्या०** श्लोकवार्तिक के द्वितीयांश से द्वितीयाविभक्ति किये जाने पर **धिक् कृष्णाभक्तम्** वाक्य सिद्ध हो जाता है। कहीं-कहीं **धिङ् ( धिक् )** मूर्ख ऐसा वाक्य आता है। इस वाक्य में **धिक्** का योग होने पर भी द्वितीया नहीं दीखती। इसका कारण यह है कि योग का अर्थ केवल समीपस्थ होना ही नहीं है अपितु उस शब्द से सम्बद्ध होना चाहिये। उक्त वाक्य में प्रयुक्त मूर्ख-शब्द सम्बोधनान्त है, अतः धिक् के साथ वह सम्बद्ध नहीं है, फलतः धिक्-शब्द के योग में द्वितीयायान्त **त्वाम्** आदि पदों का अध्याहार किया जाता है।

**उपर्युपरि लोकं हरिः।** हरि इस लोक के ऊपर-ऊपर हैं। यहाँ **उपरि** शब्द का **उपर्यध्यधसस्सामीप्ये** सूत्र से द्वित्व हुआ है और द्वितीय **उपरि** शब्द की **तस्य परमाप्रेडितम्** सूत्र के द्वारा आप्रेडितसंज्ञा हो जाती है। **उपरि+उपरि** में यण् होकर **उपर्युपरि** बना है। अतः **उपर्युपरि** यह आप्रेडितान्त **उपरि** शब्द है। इसके योग में **लोक** शब्द में **उभसर्वतसोः कार्या०** श्लोकवार्तिक के तृतीयांश से द्वितीयाविभक्ति किये जाने पर **लोकम्** बना है और **उपर्युपरि लोकं हरिः** वाक्य सिद्ध हो जाता है।

**अध्यधि लोकम्।** हरि इस लोक में ही हैं। यहाँ भी **अधि** शब्द का **उपर्यध्यधसस्सामीप्ये** सूत्र से द्वित्व हुआ है और द्वितीय **अधि** शब्द की आप्रेडितसंज्ञा भी हो जाती है। **अधि+अधि** में यण् होकर **अध्यधि** बना है। अतः **अध्यधि** यह आप्रेडितान्त **अधि** शब्द है। इसके योग में **लोक** शब्द में **उभसर्वतसोः कार्या०** श्लोकवार्तिक के तृतीयांश से द्वितीयाविभक्ति किये जाने पर **लोकम्** बना है। इस प्रकार **अध्यधि लोकं हरिः** वाक्य सिद्ध हो जाता है।

**अधोऽधो लोकम्।** हरि इस लोक के नीचे-नीचे (पाताल) में हैं। यहाँ **अधस्** शब्द का **उपर्यध्यधसस्सामीप्ये** सूत्र से द्वित्व हुआ है और द्वितीय **अधस्** शब्द की आप्रेडितसंज्ञा भी हो जाती है। **अधस्+अधस्** में पूर्व सकार को रुत्व, उसको उत्त्व और गुण एकादेश होकर **अधोधस्** बना है। अतः **अध्यधस्** यह आप्रेडितान्त **अधस्** शब्द है। इसके योग में **लोक** शब्द में **उभसर्वतसोः कार्या०** श्लोकवार्तिक के तृतीयांश से द्वितीयाविभक्ति किये जाने पर **लोकम्** बना है और **अध्यधस्** के सकार को रुत्व, उसको उत्त्व और गुण एकादेश होकर **अधोऽधो लोकं हरिः** वाक्य सिद्ध हो जाता है।



**अभितःपरितःसमया-निकषा-हा-प्रति-योगेऽपि।** यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- अभितः, परितः, समया, निकषा, हा, प्रति इन शब्दों के योग में भी द्वितीया विभक्ति होती है। यह वार्तिक पूर्ववार्तिक में पठित ततोऽन्यत्रापि दृश्यते का विस्तार मात्र है। कार्य तो पूर्ववार्तिक के उक्तांश से भी सिद्ध हो सकता है।

**अभितः कृष्णम्।** कृष्ण के दोनों ओर (गोप हैं) **अभितः** (अभि-शब्द से पर्यभिध्यां च से तसिल्-प्रत्यय) शब्द के योग में **कृष्ण** शब्द में **अभितःपरितःसमया- निकषा-हा-प्रति-योगेऽपि** वार्तिक से द्वितीयाविभक्ति का विधान होने पर **अभितः कृष्णं गोपाः सन्ति** इत्यादि वाक्य सिद्ध हो जाते हैं।

**परितः कृष्णम्।** कृष्ण के चारों ओर (गाय हैं) **परितः** (परि-शब्द से पर्यभिध्यां च से तसिल्-प्रत्यय) शब्द के योग में **कृष्ण** शब्द में **अभितःपरितःसमया- निकषा-हा-प्रति-योगेऽपि** वार्तिक से द्वितीयाविभक्ति का विधान होने पर **परितः कृष्णं गावः सन्ति** इत्यादि वाक्य सिद्ध हो जाते हैं।

**ग्रामं समया।** गाँव के समीप। समीपवाची **समया** शब्द के योग में **ग्राम** शब्द में **अभितःपरितःसमया-निकषा-हा-प्रति-योगेऽपि** वार्तिक से द्वितीयाविभक्ति का विधान होने पर **ग्रामं समया नदी वर्तते** इत्यादि वाक्य सिद्ध हो जाते हैं।

**निकषा लङ्काम्।** लंका के निकट। निकटवाची **निकषा** शब्द के योग में **लङ्का** शब्द में **अभितःपरितःसमया-निकषा-हा-प्रति-योगेऽपि** वार्तिक से द्वितीयाविभक्ति का विधान होने पर **निकषा लङ्कां सागरो वर्तते** इत्यादि वाक्य सिद्ध हो जाते हैं।

**हा कृष्णाभक्तम्, तस्य शोच्यत इत्यर्थः।** कृष्ण के अभक्त के विषय में विषाद, खेद है, वे सोचनीय हैं। खेदसूचक **हा** शब्द के योग में **कृष्णाभक्त** शब्द में **अभितःपरितःसमया-निकषा-हा-प्रति-योगेऽपि** वार्तिक से द्वितीयाविभक्ति का विधान होने पर **हा कृष्णाभक्तम्** इत्यादि वाक्य सिद्ध हो जाते हैं।

**‘बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित्’।** भूखे को कुछ नहीं सूझता। यहाँ पर **प्रति** शब्द के योग में **बुभुक्षित** शब्द में **अभितःपरितःसमया-निकषा-हा-प्रति-योगेऽपि** वार्तिक से द्वितीयाविभक्ति का विधान होने पर **बुभुक्षितं किञ्चित् न प्रतिभाति** इत्यादि वाक्य सिद्ध हो जाते हैं।

इस वार्तिक में भी अन्त में **अपि** शब्द का योग है। उससे सूचित होता है कि वार्तिकोक्त शब्दों के अतिरिक्त अन्य शब्दों के योग में भी द्वितीया होती है। अतः अतः वर्जनार्थक ऋते शब्द के योग में भी द्वितीया का प्रयोग मिलता है- **फलति पुरुषाराधनमृते।**

महाभाष्य में एक इष्टि है- **क्रियाविशेषणानां कर्मत्वं नपुंसकत्वमेकवचनान्तत्वं चेष्ट्यते।** इसका अर्थ है- क्रियाविशेषण भी कर्म होते हैं और इनका नपुंसकलिङ्ग और द्वितीया विभक्ति के एकवचन में प्रयोग होता है। तदनुसार **साधु पचति, साधु छिनत्ति, मधुरं गायति, मन्दं हसति, सत्वरं धावति** इत्यादि प्रयोग बनते हैं। इन सभी में द्वितीया विभक्ति इसी **अपि** शब्द के बल से हुयी है।